Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 3, May-2018, ISSN 2230-7540

प्राचीन भारतीय आदिवासी जनजातियों का रहन-सहन एवं धार्मिक जीवन: एक ऐतिहासिक अध्ययन

Gaurav Suman[1]* Dr. Ramakant Sharma[2]

[1] Research Scholar

[2] Research Supervisor, Sunrise University, Alwar, Rajasthan

सारांश:- *आदिवासी जनजातियाँ भारत के विभिन्न राज्यों में प्राचीन काल से ही मूल जाति के रूप में निवास करती आ रही है। इनकी सामाजिक, आर्थिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन शुरू से ही अपनी विशिष्टताओं के कारण प्रसिद्ध है। संसार में ऐसा कोई देश नही है जिसमें सामाजिक और राजनैतिक जीवन पर धर्म ने भारत से ज्यादा प्रभाव डाला हो। हिन्दू समाज में पाये गए धर्म के प्राचीन स्वरूप के रूप में जनजाति धर्म है। आदिवासी जनजातियों के धर्म और संस्कृति को समझने के लिए भारतीय जनजाति धर्म की महत्वपूर्ण विशेषताओं पर चर्चा करना आवश्यक होगा। इसलिए आदिवासी लोगों के विश्वास, सांस्कृतिक रीति-रिवाज, विचार, अनुष्ठान एवम् संस्कार, नीतियाँ, देवी और देवताओं, पर्व-त्यौहारों, वैवाहिक प्रथाओं, मृत्यु सम्बन्धी (दाह संस्कार) प्रथाएँ, लोकगीतों इत्यादि की चर्चा करनी अनिवार्य होगी।*

शब्द संकेत:- *आदिवासी जनजातियाँ, रहन-सहन, एवं धार्मिक जीवन*

----------X----------

भूमिका

आदिवासी जनजातियाँ भारत के विभिन्न राज्यों में प्राचीन काल से ही मूल जाति के रूप में निवास करती आ रही है। इनकी सामाजिक, आर्थिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन शुरू से ही अपनी विशिष्टताओं के कारण प्रसिद्ध है। संसार में ऐसा कोई देश नही है जिसमें सामाजिक और राजनैतिक जीवन पर धर्म ने भारत से ज्यादा प्रभाव डाला हो। हिन्दू समाज में पाये गए धर्म के प्राचीन स्वरूप के रूप में जनजाति धर्म है। आदिवासी जनजातियों के धर्म और संस्कृति को समझने के लिए भारतीय जनजाति धर्म की महत्वपूर्ण विशेषताओं पर चर्चा करना आवश्यक होगा। इसलिए आदिवासी लोगों के विश्वास, सांस्कृतिक रीति-रिवाज, विचार, अनुष्ठान एवम् संस्कार, नीतियाँ, देवी और देवताओं, पर्व-त्यौहारों, वैवाहिक प्रथाओं, मृत्यु सम्बन्धी (दाह संस्कार) प्रथाएँ, लोकगीतों इत्यादि की चर्चा करनी अनिवार्य होगी।

आदिवासी-जनजातियों का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

विश्व के अधिकांश देशों में जनजाति निवास करते है एवं उन्हें विभिन्न नस्लों एवं नामों से पुकारा जाता है। डी.एन. मजूमदार परिभाषित करते हैं कि एक जनजाति एक सामाजिक समूह है जिनमें क्षेत्रीय सम्बद्धता, भाषा और बोली में ये संगठित होते हैं, दूसरी जनजातियाँ या जातियो से सामाजिक दूरी बनाए रखते है। रेल्फ लिण्टन के अनुसार जनजाति एक लोगों की मण्डली होती है जिसमें औपचारिक जातिय संगठन की समीपस्थ, विस्तृत, सुपरिष्कृत अतिरिक्त बनावट होती है। यह बनावट इस आधार भूत दशा पर खडी होती है। परन्तु जातिय समूह उसके बिना भी जीवित रह सकते है, विद्यमान रह सकते है और उस आधार भूत स्थिति के बिना अपना कार्य भी कर सकते है।ऐसा प्रतीत होता है कि आदिवासी लोगो में भौतिक जातिय तत्वों की अनुपलब्धता का कारण युगों तक विभिन्न जाति सम्बन्धी तत्वों का तालमेल रहा है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आदिवासी लोगों के जातीय तनाव के बारे में सामाजिक वैज्ञानिको के अलग अलग दृष्टि कोण हैं परन्तु यह अविरोधाभासी है कि वर्तमान में वे सामान्यता आर्य द्रविडो की तथा मंगोलियों की मिली जुली जातिगत गुणों को प्रदर्षित करते है। सामाजिक रुप से आदिवासी लोग सबसे अधिक पिछडी हुई जनजातिय समुदाय हैं।

www.ignited.in

भारतीय जनजाति धर्म की विशेषताएँ -

मन - जनजाति समाज में प्रचलित मन में विश्वास की परिभाषा करते हुए यह इंगित किया गया है कि "मन भौतिक शक्ति से बिल्कुल अलग एक ताकत (शक्ति) है जो अच्छा और बुरा करने के लिए हर प्रकार का कार्य करता है और नियंत्रित करने में ज्यादा से ज्यादा लाभकारी है।" मजूमदार और मदान के अनुसार, "आदिवासी लोगों का सम्पूर्ण धार्मिक जीवन जानने योग्य, व्यक्तित्व शून्य, भौतिकहीन और व्यक्तिगत अलौकिक शक्ति में विश्वास की उपज है जो सभी वस्तुओं सजीव और निर्जीव जो संसार में मौजूद है, वे प्रवेश कर चुकी है।" आदिवासी लोगों के बारे में यह देखा गया है कि वे सर्वउपस्थित आत्माओं में रहती है और ये आत्माएँ जो दोनों प्रकार की होती है उपकारी और अपकारी उनके धार्मिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

बोंगा की अवधारणा - यह एक रहस्यात्मक और व्यक्तित्वहीन शक्ति है और इसके पीछे अवधारणा है वर्षा आने की तूफान आने की, बाढ, घुतहरली बीमारियाँ (संक्रामक रोग) और जंगली जानवरों का बाहुल्य। हरेक स्थान पर बोंगा की ताकत के कारण ही इस तरह के उपद्रव होते है। इस तरह बोंगा मन का ही एक रूप है। आदिवासी लोगों का यह दृढ विश्वास है कि प्रत्येक अशुभ कार्यों के पीछे एक व्यक्तित्व हीन दुर्भावना (शक्ति) होती है और यह लोगों को नुकसान पहुँचाती है यदि गलतियाँ बड़े पैमाने पर हो रही होती है।

ब्रह्मवाद या जीववाद - भारतीय जनजाति धर्म की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता ब्रह्मवाद या जीववाद है। जनजाति के लोग विश्वास करते है कि ऊँचें-ऊँचें पर्वतों, बाढ लाने वाली नदियाँ (उफनती हुई नदियाँ) बड़े-बड़े वृक्ष और महामारियों के पीछे अलौकिक शक्तियाँ होती है। वे इन शक्तियों को प्रसन्न रखने की कोशिश में लगे रहते है। इसके लिए वे तरह-तरह के पूजा-पाठ करते है और आराधना एवं प्रायश्चित करते रहते है। कभी-कभी ये लोग बिना नाम लिए पूजा-पाठ करते रहते है। आदिवासी लोगों का विश्वास है कि शोक और दुख जो उनपर आते है अदृश्य और गन्दी आत्माओं के कार्यों का परिणाम है जिसके लिए उन लोगों की प्रार्थना और बलिदान जैसे कार्य प्रायश्चित और पूजा के रूप में किए जाने चाहिए।

सजीवता - सजीवता के अनुसार अलौकिक शक्तियाँ, हरेक सजीव व्यक्ति के सिवाय निर्जीव वस्तु के पीछे व्यक्तित्व हीन शक्तियाँ होती है। इस प्रकार जनजाति धर्मों में हड्डियों और परों में अलौकिक शक्तियों की समूह में रह कर शान्ति और खुशहाली के लिए प्रार्थना की जाती है। जीवन्तता और आत्मावाद/ब्रह्मवाद में अन्तर करना बहुत मुश्किल हे। फिर भी इन दोनों के बीच निम्न अन्तर बताया जा सकता है। सजीवता के अनुसार कुछ रहस्यात्मक, अज्ञात व्यक्तिविहीन शक्तियाँ सभी जीवित मानव शरीर वालों में तथा वस्तुओं के विपक्ष में होती है जबकि जीववाद में सभी गतिशील और गतिहीन वस्तुओं में पशु गत भावना विद्यमान होती है। सजीवता का उदाहरण बिहार की जनजातियों में दिखाई देता है। उनका मानना है कि हड्डियों मालाओं पत्थरों और पंखों (परो) में सजीवता और जादूई शक्ति होती है। तुलनात्मक दृष्टि से सजीव चीजों की पूजा सेवा आत्मवाद की अपेक्षा अधिक प्रचलन में है। इसलिए आत्मवाद में सजीवता की विशेषताएँ दिखाई देने लगती है।

आत्मा की अमरता में विश्वास - बहुत सी जनजातियों में ऐसी प्रथा है कि वे लोग दाह संस्कार के अनुष्ठानों को दो बार देखते है। ऐसा इसलिए क्योंकि उनकी आत्मा अमर होती है ऐसा विश्वास है। कभी-कभी दूसरा संस्कार पहले की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। जनजाति लोगों का विश्वास है कि शरीर के मरने पर आत्मा नष्ट नही होती और उसे लम्बे समय तक भोजन आदि की आवश्यकता होती है। नागा और निकोबार द्वीप की जनजातियों के लोगों में, मृतक मनुष्य की खोपडी को एक लकड़ी के बुत (प्रतिमा, मूर्ती) पर रख दिया जाता है। इस विश्वास से कि मृतक आदमी की आत्मा इस खोपडी में से बुत (प्रतिमा) में गुजरेगी (प्रवेश करेगी)। अब इस बुत की जीवित मनुष्य की तरह से सेवा की जाती है और इसकी सभी जरूरतों को पूरा करने का प्रयास किया जाता है। कभी-कभी यह प्रतिमा पीतल की बनी होती है। जनजाति लोगों का विश्वास है कि आत्माएँ जमीन की उर्वरता को बढ़ा सकती है और जीवन दे सकती है। समस्त कुमायूँ प्रदेश में पूर्जजों की पूजा प्रचलित है, इसलिए आदिवासी लोग भी इस प्रथा को अपना रहे है।

पुनर्जन्म में विश्वास - ज्यादातर भारतीय जनजातियों को विश्वास है कि मृत्यु के बाद मनुष्य की आत्मा शरीर में जीवित रहती है और वह किसी जानवर, पक्षी या अन्य जीवधारी के शरीर में प्रविष्ट हो जाती है। भील लोगों में इस प्रकार के प्रयास किए जा रहे है जिससे यह पता चल जाए कि किसी विशिष्ट आत्मा कौन सा शरीर धारण करेगी। इसी प्रकार की मान्यताएँ असम के नागा लोगों में, बंगाल के अहीरों में, कामर और गोण्ड जनजातियो में पाई जाती है। कुमायूँ क्षेत्र में पुनर्जन्म में विश्वास होना वहाँ की बहुत आम विशेषता है। इसलिए अब आदिवासी लोग जो कुमायूँ लोगों के लगातार सम्पर्क में है, इस मान्यता में विश्वास करने लगे है।

जादू-टोने में विश्वास - जनजातिय धर्म की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता जादू-टोने में विश्वास है। विभिन्न प्रकार के जादू-टोनो सम्बन्धी खेल विभिन्न जनजातियों में प्रचलित है। जनजाति के लोग जादूगर और जादूगरनियों में विश्वास रखते है। यदि एक औरत को किसी जादूगर द्वारा जादूगरनी घोषित कर दिया

www.ignited.in

जाता है तो उसे सभी तरह के दुखों से सताया जाता है। भील लोगों में अजीब प्रकार का जादू से भरा संस्कार पाया जाता है जिससे वे महामारी के प्रभाव का खण्डन करते है। महामारी फैलने के समय, कुछ लोग कुछ घडे और टोकरियाँ बाँस के खम्भे पर लटकाते है और मुख्य गली में चिल्लाते हुए दौड़ जाते है, टोरका उनको सुनकर गाँव के अन्य लोग इस वनज को गाँव से बाहर ले जाने में उनकी सहायता करते है। शुरू के विद्वान लोग जादू टोने में आदिवासी लोगों की भागीदारी का वर्णन नही करते। परन्तु पडौसियों के साथ नियमित सम्पर्क होने की वजह से ये लोग जादुई क्रिया-कलापों में विश्वास करने लग गए है।

गण चिन्ह और वर्जना - गण चिन्हों की प्रथा जनजातिय धर्म की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। विभिन्न भारतीय जनजातियाँ विभिन्न प्रकार के गणों में विश्वास करती है। गणों को विभिन्न विशेष जाति (जनजाति) का उत्पन्नकर्ता माना जाता है। इनको मारना या इन्हें खाना वर्जित है। इनकी हर जगह पूजा की जाती है और इनका आदर किया जाता है। एक ही गण के लड़के और लड़की के मध्य शादी-सम्बन्ध नहीं हो सकते है, क्योंकि उन्हें रक्त सम्बन्धों से जुडा हुआ समझा जाता है। दर असल जनजातिय धर्म हिन्दू धर्म का सबसे अधिक प्राचीन रूप है। इस प्रकार यह प्राचीन रूप की एकरूपता की शुद्धता की विशेषता को दर्शाता है। इस प्रकार के निषेधों में समरूपता नहीं दिखाई देती और उन्नतिशीलता की परिमाण शीलता पर आधारित होता है। इसलिए आदिवासी लोगों की सभी धार्मिक क्रियाओं में जनजातिय धर्म की विशेषताएँ होती है।

धार्मिक मान्यताएँ और आदिवासी लोगों के देवी-देवताएँ - आदिवासी लोगों की धार्मिक प्रथाएँ कुमायूँ पडौसियों से प्रभावित है। आरम्भिक विद्वान कहते है कि आदिवासी लोगों के स्वयं के देवी देवता नहीं होते। उनके स्थानीय देवी-देवता खुदाई और मलिकार्जन हैं जिन्हें वे हिन्दूओं के साथ पूजते है। उनमें प्रतिमाएँ नही होती। आदिवासी लोगों के न तो मन्दिर होते है और न उनके स्वयम् के देवता आदिवासी लोग स्थानीय हिन्दू देवताओं के अस्तित्व को मानते है जैसे नन्दा देवी, काली मलिकार्जुन दुस्करनाथ, खुदाई, घन देवता और अन्य देवियाँ जैसे देवियाँ जो उन्हें प्रभावित कर सकती है। आदिवासी लोगों के धर्म मंे पुरखों की पूजा या प्राकृतिक विशेषताओं वाली आत्माओं की पूजा और स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा शामिल है। शेरिंग ने बताया कि आदिवासी लोग अपनी नन्दा देवी की पूजा अर्चना करते है। जब वे लोग गाना गाते है और नृत्य करते है और आमने सामने दो पंक्तियाँ बना लेते है और घेरे में गोल-गोल घूमते है, तब यह ज्ञात होता है कि वे अपनी नन्दा देवी की पूजा कर रहे हैं।

वे लोग किसी विशेष प्रकार के जादू-टोने में कुशल नहीं होते परन्तु लोग इसके जानकार होते है। कभी-कभी आकस्मिक रूप से किसी राक्षस या पिशाच से प्रभावित हो जाने पर या किसी उन्माद की अवस्था में असम्बद्ध भाव व्यक्त करने लग जाते है जिन्हें भविष्यवाणी (देवी-उपदेश) की संज्ञा दे दी जाती है। उस हालल में परिवार के रक्षक राक्षस से प्रार्थना की जाती है कि इस दूषित बिना बुलाए आए हुए को बाहर निकाल दें। और वह यह निर्देश देता है कि इस कार्य के परिणाम को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की पूजा या बलि का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। इस परिवारिक राक्षस का नाम बैताल है जिसे संस्कृत में वेताल कहा जाता है।आदिवासी लोगों का धर्म उनके परम्परागत विश्वास और हिन्दू धर्म के स्थानीय स्वरूप का मिश्रण है। उनके देवी-देवता के प्रकार -

क्षेत्रपाल (भूमिया) - यह मैदानी या गाँव की सीमाओं का एक छोटा देवता है। यह एक उपकारी देवता है। यह किसी को यातना नही देता। इस देवता के लिए हर गाँव में एक मन्दिर है। जब फसल बोयी जाती है या नया अनाज पैदा होता है, उसकी इस आशय से पूजा की जाती है कि वह ओलो या जंगली जानवरों से इसकी रक्षा करेगा और जब फसल अन्न भण्डार में रखी जाती है तो यह देवता इसकी कीटाणुओं और चूहों से अन्न की रक्षा करेगें। यह एक न्यायकारी देवता है। वह पवित्र और अच्छे लोगों को इनाम भी देते है और बदमाश लोगों को दण्ड देते है। इन्हें मोटी बिना पत्तों वाली मीठी रोटी पसन्द है और इन्हें उपहार भेंट में दिए जाते है।

हारू - हारू एक लाभकारी आत्मा की तलाश कुमायूँनी लोगों द्वारा की गई। वह पुराने जमाने में चम्पावत का राजा हरिश चन्द्र कहलाता था, और उसकी पूजा की उत्पत्ति को स्पष्ट करने के लिए निम्न कहानी कही जाती है। राजा बहुत बूढा हो गया था। उसने अपने शेष जीवन को देवी-देवताओं की सेवा करने में गुजारने की इच्छा जतलाई, इसलिए वह हरिद्वार चला गया और एक सन्यासी का शिष्य बन गया और उसने धार्मिक जीवन अपना लिया। उसने अपने स्थानीय खाते के पैसों से हरिद्वार में पवित्र घाट का निर्माण कराया जो हरकी पैडी कहलाता है। हरिद्वार से यह तीर्थ यात्रा के लिए रवाना हुआ और क्रमशः चार धामों के दर्शन किए-उत्तर में बद्रीनाथ, पूर्व में जगन्नाथ, दक्षिण में रामनाथ और पश्चिम में द्वारकानाथ। कत्यूर के ठान में हारू का एक मन्दिर है जहाँ हर तीसरे वर्ष एक विशाल सम्मेलन होता है। आदिवासी लोग कुमायूँ धर्म से अति प्रभावित है, इसलिए उनका हारू पर बहुत ज्यादा विश्वास है।

ऐदी (ऐरी) - कुमायूँ में भू-स्वामियों की एक जाति है ऐरी। इस जाति में एक आदमी था जो पहलवान था और बड़ा शक्तिशाली था। वह शिकार का बहुत शौकीन था। जब वह मर गया तो भूत बन गया। वह बच्चों और औरतों को अपने चंगुल में फँसाने लगा। जब किसी के शरीर में प्रवेश हो कर नृत्य करता तो यह कहा जाता था "यह ऐरी है" इसकी पूजा करो, इसे हलवा खिलाओं, बिना पत्तियों वाली मीठी रोटी खिलाओं, बकरे खिलाओं इत्यादि और वह आपके बच्चों और स्त्रियों को मुक्त कर देगा। तब से आदिवासी ने उसकी पूजा करने लगे। इस प्रकार के देवता का वर्णन अटकिनसन ने भी किया है।

गंगानाथ - गंगनाथ के मुख्य देवी-देवताओं में से एक है इसलिए आदिवासी लोग भी इस देवता की पूजा कर रहे है। परन्तु पहले छोटी जाति के लोग इसकी पूजा करते थे। अटकिनसन बताते है कि दौती का राजा भाबीचन्द के लड़के का अपने परिवार से झगड़ा हो गया और वह एक धार्मिक भिक्षुक बन गया। घूमते रहने के दौरान वह पट्टीसलम के एक गाँव अडोली में पहुँचा और वहाँ उसने एक औरत को देखा और एक मनुष्य कृष्णा जोशी की पत्नी से प्रेम करने लगा। यह जोशी अलमोडा में एक नौकर था और जोगी ने अपना भेष बदल कर श्रमिक का रूप धारण कर लिया और उस घर में सेवा करने लगा जहाँ वह औरत रहती थी। जब कृष्णा को इस षडयन्त्र का पता लगा तो वह अडोली गया और उसने एक आदमी जपारूआ लुहार के साथ मिल कर अपनी पत्नी और उसके प्रेमी को मार दिया। भोलानाथ और उसके साथियों की तरह से जोगी उसकी उपपत्नी और अजन्मा बच्चा निशाचर (भूत) बन गए और लोगों को तंग करने लगे। इसलिए उन्होंने एक मन्दिर बनवा दिया और उसी समय से तीनों आत्माओं के सम्मान में उनकी नियमित सेवा करना शुरू कर दिया।

गोरिल - गोरिल के बारे में अटकिनसन ने विस्तार से वर्णन किया है। वह कहते है कि गोरिल जो कि गोरिया, ग्वेल, ग्वाल और गोल कहलाता है, यदि हम उसे उसकी प्रतिष्ठा और उसके नाम से बने मन्दिरों की संख्या के हिसाब से देखे तो वह कुमायूँ में निम्न जातियों द्वारा पूजे गए देवी-देवताओं में सबसे ज्यादा लोकप्रिय है।

नन्दा देवी - चाँद राजाओं की अवधि के दौरान नन्दा देवी की पूजा ने मेले का रूप धारण कर लिया। इससे पहले नन्दा देवी की पूजा तो की जाती थी, परन्तु वह सिर्फ मूर्ति के रूप में ही पूजी जाती थी। दो प्रतिमाओं को बनाने की प्रथा बाज बहादुर चाँद के समय से शुरू हुई। आज भी सुदूर गाँवों में सिर्फ एक ही प्रतिमा बनाई जाती है। इस अतिरिक्त प्रतिमा के बनाने का कारण यह दिखाई देता है कि देवी नन्दा और सुनन्दा का जन्म एक साथ ही हुआ था।

बुरी बला मसान - राक्षस मसान प्रायः जलते हुए मैदानों में पाए जाते है जो नियमानुसार झरनों के संगम पर रखे जाते है, इसलिए इन्हें मरघट कहा जाता है। उनके परगना फल्दाकोट के कन्दर्कखुवा में कोसी पर काकरीघाट स्थान पर मन्दिर बने हुए है और असंख्य छोटे-छोटे स्मारक जलते हुए घाटों पर स्थित है। व्यक्ति जो कोई विशेष लक्षण नही दर्शाते, वे कुछ समय के लिए उनके प्रभाव में आ जाते है। मसान ऐसा कहा जाता है कि रंग के काले होते है और अपनी पहचान (बनावट) छिपाए रखते है। आदिवासी लोगों के धर्म का गहन अध्ययन करने पर पता चलता है कि कुमायूँ पडौसियों की वजह से परिवर्तन के तत्व प्रबल रूप में है। आदिवासी लोगों की प्रथाओं ने कुमायूँ धर्म का रूप ले लिया है। और कुमायूँ लोग जमीन के देवताओं से पूर्ण परिचित है इसलिए आदिवासी लोगों के पडौसियों से अच्छे सम्बन्ध होने के बाद कुमायूँ धर्म का सम्पर्क आदिवासी लोगों को गहराई से प्रभावित कर रहा है। धीरे-धीरे आदिवासी लोगों के जनजातिय धर्म ने कुमायूनी धर्म का स्थान ले लिया है।

अनुष्ठान - यद्यपि आदिवासी लोग अब अपने पडौसियों से बहुत ज्यादा खुल गए है लेकिन यह आर्थिक दशा है जो उनके द्वारा अनुष्ठानों को क्रियान्वित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। क्योंकि आदिवासी लोगों के पास ज्यादा मुद्रा नही है, इसलिए वे इन अनुष्ठानों को कुमायूँ लोगों की तरह नही मनाते। शुरू के विद्वानों ने उनके अनुष्ठानों का वर्णन किया है जैसे जन्म मृत्यु औश्र सिर्फ विवाह। आदिवासी लोगों के द्वारा जो अनुष्ठान कराये जाते है वे जन्म, विवाह और दाह संस्कार है। वान आदिवासी विवाह के बारे में विस्तार से वर्णन तीसरे अध्याय में कर दिया गया है इसलिए जन्म और दाह संस्कार अनुष्ठानों की चर्चा इस अध्याय में की जाएगी।

जन्म - यह एक महत्पूर्ण संस्कार है। इसे हिन्दू लोग मनाते है और संस्कारों को सम्पन्न करने के लिए मुद्रा की आवश्यकता होती है, यह निर्विवाद है कि आज तक आदिवासी लोग गरीबी और अभाव में जी रहे है, इसलिए वे ऐसी स्थिति में नहीं है कि वे जन्म संस्कार को कुमायूँ पडौसियों की तरह से सम्पन्न कर सकें। परन्तु वे जन्म प्रदूषण को ग्यारह दिनों तक देखते है। इस अवधि में स्त्री और नवजात को अलग कमरे में या कमरे के एक कौने में रखा जाता है। आजकल बच्चे का आधुनिक नाम रखा जाता है जैसे लड़की का नाम किरण तथा लडके का नाम राहुल। जब कि पहले लडके का नाम रतन या रामू और लडकी का नाम कलावती रखा जाता था।

दाह संस्कार - आदिवासी लोगों के दाह संस्कार की प्रथा प्रचलित थी जिसे पहले के विद्वानों ने वर्णन किया है, शेरिंग कहते है ऐसा कहा जाता है कि आदिवासी लोग अपने मृतक मनुष्य को गाड़ते

www.ignited.in

है परन्तु ये आदमी आजकल दाह संस्कार की प्रथा अपना रहे है, उनकी पहले कुछ भी प्रथा रही हो, उनका दाह-स्थान किसी झरने के किनारे चुना जाता है। मृतक आदमी के बच्चे और छोटे भाई अपने बाल, दाढी और मूँछ के बाल मुंडवाते है और ये मृतक आदमी की आत्मा को कब्र पर श्रद्धा व बलिदान के रूप में अर्पिल किए जाते है।

आदिवासी लोगों की संस्कृति - हिमालय के निवासियों का सांस्कृतिक इतिहास बहुत पुराना है, शायद इतना पुराना जितना कि स्वयम् मानव-इतिहास। संसार के इस भाग में मनुष्य के अस्तित्व का अविवादास्पद प्रमाण है। पश्चिमी हिमालय के शिवलिंग प्रवेश से भू-गर्भ शास्त्रियों और मानव वैज्ञानिकों द्वारा खोजे गए आरम्भिक मानव के जीवाश्म सम्बन्धी तथ्यों का भण्डार। जनजातिय संस्कृति भारत की सांस्कृतिक विरासत का अनिवार्य हिस्सा है। इसलिए जनजातिय संस्कृति और इसकी विरासत की सम्पूर्ण (उचित) जानकारी भारतीय संस्कृति के अन्वेषण में अनिवार्य रूप से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि जनजाति संस्कृतियाँ और इसके साथ-साथ विभिन्न पौराणिक समूहों की विविध संस्कृतियाँ भारतीय संस्कृति का निर्माण करती है।

मेले और त्यौहार

आदिवासी लोगों के त्यौहारों पर कुमायूँ के पडौसियों का प्रभाव देखा जा सकता है। इसलिए आदिवासी लोग दोनों तरह के त्यौहार मनाते है। क्रुक कहते है कि उनके त्यौहार कर्क राशि में सूर्य का गमन "और मेष राशि के, मकर राशि के मेख मकर की संक्रान्त, शादी के दिन और बच्चे के जन्म के बाद इन त्यौहारों पर वे लोग अच्छा खाना खाते है और मित्रों और रिश्तेदारों के साथ आनन्द लेते है। उनके सामाजिक धार्मिक दायरे में त्यौहार मनाना एक नयी चीज है। जिसमें उनकी गतिहीनता में परिवर्तन देखा जा सकता है।

जौलजिबी मेला - यह मेला प्रति वर्ष नवम्बर के महीनें में उत्तराखण्ड के पिथौरागढ़ जिले की धारचूला तहसील के जौलजिबी स्थान पर भरता है। यह स्थान काली और गोरी नदियों के संगम पर स्थित है जो तीन विभिन्न संस्कृतियों शोका, नेपाली और आदिवासी लोगों से शामिल कुमायूँ लोगों का मिलन स्थान है। जोहर, दरमा चैदान और बयान लोगों का प्रवेश द्वार किसी समय उत्तराखण्ड के तिब्बत और तराई क्षेत्रों के बीच का केन्द्रीय स्थान समझा जाता था। यद्यपि यह मेला मुख्य एक व्यापारिक मेला है, इसकी सांस्कृतिक महत्ता को भी नकारा नही जा सकता।

नन्दा देवी का मेला - नन्दा शब्दावली का अर्थ है खुशहाली नन्दा देवी का मेला बहुत अधिक लोगों द्वारा तथा भव्यता (आलीशान तरीके से) मनाया जाता है और यह इस क्षेत्र के आर्थिक और सांस्कृतिक विपुलता को दर्शाता है। यह मेला अगस्त मास के अन्तिम दिनों या सितम्बर के शुरू के दिनों में जिनकी तिथि चन्द्रमा के पंचाग पर निर्भर रहती है, मनाया जाता है। इस मेले की शुरूआत राजा कल्याण चन्द जो 16वीं शताब्दी में गढवाल के चाँद वंशज थे, से की गई और यह मेला विभिन्न प्रदेशों की आर्थिक और सांस्कृतिक खुशहाली को प्रदर्शित करता है।

मकर संक्रान्ति - यह सम्पूर्ण कुमायूँ क्षेत्र के साथ-साथ आदिवासी लोगों का प्रमुख त्यौहार है। अटकिनसन बताते है कि मकर संक्रान्ति 12 जनवरी, 1878 को आया था। इसे गुगुतिया, फूल, उत्तरायिणी या उत्तैरिनी भी कहते है। घुगुतिया नाम घी या तिल के तेल में आटा पका कर छोटी-छोटी प्रतिमाओं से लिया गया है और ये आकृतियाँ चिडियाओं से मिलती जुलती होती है जो माला में हार की तरह गुंथे होते है। इन्हें इस दिन बच्चों के गले में बाँध दिया जाता है।कल यानि अगले दिन बच्चे कौए या अन्य पक्षियों को बुलाते है और उन्हें ये माला (हार) के साथ खिलाते है और स्वयं कुछ हिस्सा खाते है। क्रुक ने बताया कि मकर संक्रान्ति आदिवासी लोगों का महत्वपूर्ण त्यौहार है। आजकल भी यह त्यौहार जोश - खरोश के साथ मनाया जाता है।

कर्क संक्रांत - यह त्यौहार कुमायूँ में बडे उत्साह से मनाया जाता है। क्रुक ने बताया कि आदिवासी लोग इस त्यौहार को बडे आनन्द के साथ मनाते है। इसे हरेला, हरियालों या हरियाओं संक्रांत के नाम से निम्न प्रथा के कारण जाना जाता है - आषाढ की 24 तारीख को काश्तकार जौ, मक्का, दाल (गहात) या सरसों (लाई) मिट्टी की टोकरी में बोए जाते है और महिने के अन्तिम दिन वे नए उगे (जन्मे हुए) पौधो के बीच में महादेव और पार्वती की मिट्टी की प्रतिमा रखते है और उन्हें उन देवी-देवताओं की याद मे पूजा जाता है। परन्तु कर्क संक्रांत की अपनी अपनी महत्ता है। आदिवासी लोगों की नौजवान पीढ़ी इस त्यौहार को बड़ी खुशी के साथ मनाती है।

पूस - हिन्दू धार्मिक पुस्तकों के अनुसार उत्तायनी के दिन सूर्य कर्क के राशि चक्र सम्बन्धी चिन्ह से मकर के राशि चक्र सम्बन्धी चिन्ह में प्रवेश करता है अर्थात् इस दिन के बाद से सूर्य उत्तारण हो जाता है अर्थात यह उत्तर की ओर घूमना शुरू कर देता है। ऐसा कहा जाता है कि इस दिन से जो मौसम बदलने का संकेत देता है प्रवासी पक्षी पहाडियों की और लौटना शुरू कर देते है। मकर संक्रान्ति पर लोग खिचडी (दाल और चावल का

मिश्रण) दान में देते है, पवित्र नदियों में स्नान करते है, उत्तरायणी मेलों में भाग लेते है और घुघुटिया या काले कव्वे का त्यौहार मनाते है।

बिखौटी - स्यालदे बिखौटी विसुवत संक्रान्ति को मनाया जाता है। प्राचीन विजय के उपलक्ष में स्यालरे बिखौटी मनाया जाता है। इस दिन दीवार हट के पुराने कस्बे स्यालदे पाखर में बागवत मेला आयोजित किया जाता है। लोग इस मेले केा खुशी से गायन और नृत्य करके मनाते है। इस मेले के एक दिन पहले एक और मेला विमनदेश्वर का मनाया जाता है जिसमे भगवान शिव की पूजा की जाती है। यह मेला पिछले वर्ष के जहर की समाप्ति की खुशी में मनाया जाता है।

होली - यह त्यौहार आदिवासी लोगों से ज्यादा प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण नही है। परन्तु कुमायूनी लोगों की होली आदिवासी लोगों को बहुत ज्यादा प्रभावित करती है। कुमायूनी लोग इस बात का बहुत ध्यान रखते है कि किस समय राग पर आधारित गीत को गाया जाना चाहिए। होली का त्यौहार प्रमुख रूप से निम्न लोगों द्वारा मनाया जाता है और उच्च पहाडी पर रहने वाले लोग इस त्यौहार से अनभिज्ञ है। घरारी या होली के अन्तिम दिन के दो दिन बाद टीका होली मनाई जाती है जबकि धन्यवाद का कार्यक्रम चलाया जाता है। यह कार्यक्रम लोगों की योग्यता के अनुरूप होता है और बच्चों के जन्म, शादी या किसी अन्य किसी मांगलिक कार्य के शुभअवसर के उपलक्ष में मनाया जाता है।

दीपावली - यह त्यौहार कुमायूँ पडौसियों के प्रभाव के फलस्वरूप मनाया जाता है। सम्पूर्ण कुमायूँ क्षेत्र में यह त्यौहार बडे आनन्द और खुशी से मनाया जाता है। उत्सव से पहले घरों की सफेदी की जाती है। नए कपडे गहने, बर्तन और घर-गृहस्थियों की वस्तुएँ खरीदी जाती है। शाम को दीपक और मोमबत्तियाँ जलाई जाती है। आजकल कुमायूँ लोगों की तरह से आदिवासी लोग भी इस त्यौहार को मना रहे है।

दस्तकारी

दस्तकारी की परिभाषा इस प्रकार है – "वस्तुएँ जो हाथ द्वारा बनाई जाती है प्रायः ये साधारण औजारों से बनाई जाती है और कला-पूर्ण होती है और प्राकृतिक रूप से परम्परागत होती है। ये उपभोग में आने वाली वस्तुएँ होती है और सजावट की होती है।" जनजाति लोग बहुत से व्यवसायों के द्वारा अपनी आजीविका चला रहे है जैसे जंगल लगाना और भोजन संग्रह बदलती हुई काश्तारी, व्यवस्थित कृषि और कुल-कारखानों का श्रम, पशुपालन, मछली पकड़ना परम्परागत वाणिज्य जिनमें गृह-गृहस्थी की वस्तुएँ बनाने वाली इण्डस्ट्री, दस्तकारी सहित सबसे प्रमुख है। जनजातियाँ विभिन्न-विभिन्न दस्तकारियाँ पैदा कर रखी है।

काष्ठ कला - लकडी पर खुदाई करना उत्तराखण्ड की बहुत महत्वपूर्ण दस्तकारी है। क्योकि निकटस्थ जंगलों से कच्चा माल के रूप में पर्याप्त लकड़ी उपलब्ध हो जाती है। उत्तराखण्ड के काष्ठ कलाकारों ने लकडी पर खुदाई की कला में निपुणता हासिल कर ली थी। लडकी और लकडी से बने उत्पादों की बहुलता होने से प्रदेश के कलाकारों ने इस क्षेत्र के घरों में दरवाजों, खिडकियों तथा छतों पर खुदाई के नए-नए सुन्दर नमूने बनाए है। ये सुन्दर-सुन्दर जडे हुए दरवाजे और खिडकियाँ कला प्रेमियों को आकर्षित करते है। देवी और देवताओं की भाव भंगिमा इस खुदाई में चार चाँद लगा देती है। कलाकार विशिष्ट प्रकार का जालीदार कार्य करके खिडकियों की खुली जगह को भरने में कलाकारी दिखाते है जिससे पर्दे जैसे प्रभाव दिखाई देता है। आदिवासी लोगों की काष्ठ कला का वर्णन पहले भी किया जा चुका है।

हल - हल को स्थानीय भाषा में हलांक कहा जाता है। यह एक हल्के और सीधे और चैडे टुकडे (लकडी) जिसे मड कहते है जिससे एक लट्ठा (पोल) समकोण पर स्थित कर दिया जाता है ऊपर वाले भाग पर एक तिरछा कट होता है जो जूड़े से बाँध दिया जाता है और वह लाठी कहलाता है। इसके ऊपर के भाग पर एक हैण्डिल लगा होता है जो इसके समकोण पर होता है।

लकड़ी के बर्तन - आदिवासी लोग लकड़ी के बर्तन बनाने में बहुत दक्ष है। यह कुमायूँ पडौसियों से विनियम की उनकी प्राचीन सामग्री है। यहाँ महत्वपूर्ण साधन (स्रोत) उपलब्ध है जो उनके अस्तित्व (जीविका) के लिए आवश्यक तत्व प्रदान करते है। उनके यहाँ मुख्यतया तीन प्रकार के प्याले होते है - प्याली, डाबा और थेकी। वे अपने हल पडौसियों केा बेच भी देते है। आदिवासी लोग धीरे-धीरे अपने पडौसियों से सीख रहे है और नए नए औजार विकसित कर रहे है।

काष्ठ कला प्रशिक्षण केन्द्र

वर्तमान में पिथौरागढ जिले के धारचूला तहसील के किमखौला गाँव में एक हस्तकला प्रशिक्षण केन्द्र खोला गया है। इस केन्द्र में दो प्रशिक्षकों को नियुक्त किया गया है। आस पास गाँवों के आदिवासी लोग यहाँ प्रशिक्षण प्राप्त करते है। आजकल फर्नीचर कला का प्रशिक्षण आदिवासी लोगों को दिया जा रहा है। आदिवासी लोगों को यह पहल लाभदायक होगी क्योकि इस क्षेत्र में लकड़ी (जंगलों) का पर्याप्त भण्डार उपलब्ध है। आदिवासी समुदाय की औरतों को पिथौरागढ़ के धारचूला तहसील के जौल बिबी में काष्ठ कला और करघा का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। उन्हें प्रशिक्षण के साथ-साथ वृत्तिका भी दी जा रही है।

www.ignited.in

पहनावा और गहने

एन.एस. बिष्ट कहते है पुरूष लोग अपनी लंगोटी के चारों ओर एक छोटा स्कर्ट जैसा कपडा लपेटते है जिसे वे लोग टिल कपडा एक कछाड कहते है या धोती भी पहनते है। इस प्रकार वे लोग अपने तरह का स्कर्ट और भोतो (बनियान) पहनते है जिसमें लाइनिंग और बटन होते है। लगभग सभी आदिवासी लोग टोपी पहनते है। औरतें गुनी (लुंगी के समान) और एक अलग तरह का ब्लाउज पहनती है जिससे पीछे का हिस्सा खाली होता है और उसे तनियों (रस्सी) से रोकते है जो क्षैतिज अर्थात आडी रेखाओं में पीछे तक लगी होती है। यह लिखने की तिथि तक आदिवासी लोग रोटी कपडा और मकान जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं को जुटा पाने में असमर्थ है तो फिर गहने जैसी द्वितीयक आवश्यकताओं को जुटा पाने की उनसे किस प्रकार आशा की जा सकती है।

निष्कर्ष

जनजातियों में से सबसे पिछड़ी आदिवासी जनजाति के बारे में ऐतिहासिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से विश्लेषण कर इन विलुप्त हो रहे आदिवासियों को संरक्षित करना एक प्रयास है। क्षेत्र में निवास कर रहे विभिन्न जनजातियों में तराई भाभर क्षेत्र में रहने वाली बुक्सा जनजाति घने मलेशियाई जंगलों में आदिकाल से निवास कर रही है और ईस्ट इंडिया कम्पनी के काल से वर्तमान तक राजनीतिक व आर्थिक विकास के राक्षस की भेंट चढ रही है। उनकी भूमि कभी विस्थापित सिखों को तो कभी सेवानिवृति प्राप्त सैनिकों को दी जाती रही है और आर्थिक व सामाजिक रूप से सशक्त अन्य जनजातियाँ भी इनका शोषण कर रही है। मानव विकास सूंचकाक में बहुत नीचे होने के कारण भारत सरकार ने इसे Primitive Tribe Group (PTG) में शामिल किया है और इन आदिवासियों की जनसंख्या तेजी से कम हो रही है जिसे संरक्षण प्रदान करना वर्तमान परिवेश की माँग है। इन विलुप्त हो रही आदिवासी जनजातियों को यदि बचाया नहीं गया तो इन के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की कई विशेषताऐं भी विलुप्त हो जायेंगी।

सन्दर्भ

1. नोटियाल, शिवानन्द (1990) उत्तराखण्ड की जनजातियाँ, सुलभ प्रकाशन, लखनउ।

2. पन्त, ललित, कुमायूँ के आदिवासियों का आर्थिक अध्ययन, कुमायूँ यूनिवर्सिटी नैनीताल।

3. वैष्णव, यमुना दत्त (1977), कुमायूँ इतिहास खारू (कसिट) जाती के परिपे्रक्ष में मार्डन बुक डिपो, नैनिताल।

4. रस्तोगी, अलका (2005) आदिवासी सामाजिक संरचना एवं महिलाओं की प्रस्थिति, उदयपुर: आर्य बुक सेन्टर।

5. वैद्य, नरेश कुमार (2003). जनजातीय विकास: मिथक एवं यथार्थ, दिल्ली: रावत पब्लिकेशन।

Corresponding Author

Gaurav Suman*

Research Scholar